

पुरुषार्थचतुष्टयः एक विवेचन

डॉ. जे. सी. नारायणन् आचार्य एवं विभागाध्यक्ष संस्कृत,
बाबू शोभा राम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर ।

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति में मानव जीवन के उद्देश्य के विषय में अत्यन्त गहन चिन्तन किया गया है। जन्म से पूर्व अनन्तकाल पर्यन्त तथा मृत्यु के बाद अनन्तकाल पर्यन्त जीवात्मा अव्यक्त रहती है केवल मध्यवर्ती काल में ही मानव जीवन के रूप में व्यक्त होती है। ऋषियों ने गहन चिन्तन द्वारा पुरुष के लक्ष्य को निश्चित करके धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष रूपी चार पुरुषार्थों की व्यवस्था की। 'पुरि देहे शेते इति पुरुषः' – परिभाषा के अनुसार चैतन्यात्मा अथवा जीवात्मा ही 'पुरुष' है। उस देह स्थित जीवात्मा का 'अर्थ' ही 'पुरुषार्थ' कहलाता है। 'अर्थ्यते प्रार्थ्यते सर्वैः इति अर्थः' – निरुक्ति के अनुसार मन का अभिलषित फल 'अर्थ' पद से व्यवहृत होता है। पुरुष, जिस फल की इच्छा करता है वही 'पुरुषार्थ' है। इस परिभाषा के अनुसार विश्व के सभी विषय पुरुष द्वारा अभिलषित है किन्तु वेदादिशास्त्रों में अभीष्ट सुखों में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ही पुरुष के अभीष्ट माने गये हैं अतः इन्हें ही 'पुरुषार्थ' पद से इंगित किया जाता है। इन्हीं पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिये ही पुरुष को प्रयत्नशील रहना चाहिये।

विषय प्रवेश

इन पुरुषार्थों में मानव-प्रवृत्ति को नियन्त्रित करने का उपक्रम किया गया है। धर्म, अर्थ, काम— इन तीनों को 'त्रिवर्ग' पद से बोधित किया जाता है। पुरुष जीवन में त्रिवर्ग के सम्यक् साधन से चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति होती है। त्रिवर्ग साधन है व मोक्ष साध्य है। साधन के सम्यक् अनुष्ठान से साध्य की प्राप्ति होती है। अतः मानव जीवन की सफलता त्रिवर्ग की प्राप्ति में ही है। इन त्रिवर्ग के साधन से गृहस्थ को ऐहिक तथा पारलौकिक अभ्युदय की प्राप्ति होती है, महाभारत में कहा गया है—

त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्तव्यो गृहमेधिनः ।

तत्संसिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च ।।¹

इन त्रिवर्ग के सफल सम्पादन में पुरुष को निष्पक्ष भाव रखना चाहिये। इनमें प्रत्येक के अनुष्ठान में दूसरे पुरुषार्थ की बाधा नहीं होनी चाहिये अथवा एक के अधिक अनुष्ठान से दूसरे-पुरुषार्थों में समय की न्यूनता होगी तो पुरुषार्थ प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है। धर्मार्थकाम की सम्यक् समय-विभाजन द्वारा सेवा करनी चाहिये। परस्पर प्रत्येक में बाधा नहीं हो यह प्रयास पुरुष को करना चाहिये-

धर्मार्थकामाः सममेव सेव्या यो ह्येकसक्तः स जनो जघन्यः ।²

इसी को स्पष्ट करते हुए महाकवि भारवि कहते हैं-

असक्तमाराधयतो यथायथं विभज्य भक्त्या समपक्षपातया ।

गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान् न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम् ।।³

इस त्रिवर्ग में धर्म का माहात्म्य अधिक है। क्योंकि सभी पुरुषार्थों का मूल 'धर्म' ही है। धर्मात्मा पुरुष को इस लोक व परलोक में सुख प्राप्त होता है-

धर्मं चार्थं च कामे च धर्म एवोत्तरोभवेत् ।

अस्मिंल्लोके परे चैव धर्मात्मा सुखमेधते ।।⁴

श्रुति वाक्य बारम्बार यही कहते हैं कि मनुष्य को धर्म के विषय में कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिये- 'धर्मान्न प्रमदितव्यम्' भगवान् की कृपा से ही मनुष्यों के पुरुषार्थचतुष्टय सम्पन्न होते हैं अतः प्रत्येक पुरुष को निष्काम भाव से भगवान् की आराधना करनी चाहिये-

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।

एकमेव हरेस्त्रय करणं पादसेवनम् ।।^५

विषय विवेचन

पुरुषों का परम लक्ष्य पुरुषार्थचतुष्ट का सम्यक् सम्पादन करना है। उसे कैसे सम्पादन करना है। उसे कैसे सम्पादन करना चाहिये, उनका स्वरूप क्या है? इस विषय में सर्वप्रथम क्रमशः उनका विवेचन प्रस्तुत है—

धर्म

पुरुष का प्रधान पुरुषार्थ 'धर्म' ही है। चेतन प्राणी का यह स्वभाव ही है कि वह वर्तमान में न्यूनता का अनुभव करता है और उन्नति या अभ्युदय के लिये सदैव प्रयत्न करता है। उस उन्नति या अभ्युदय की प्राप्ति का साधन 'धर्म' ही है। धर्म का विपरीत भाव अधर्म है। उन्नति-अवनति का साधन धर्म-अधर्म ही है— 'धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्तात् भवत्यधर्मेण'^६ धर्म की विभिन्न परिभाषाएं तथा निर्वचन जन्य व्युत्पत्तियां दी गयी है—

'यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'^७

'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'^८

धियतेऽनेने इति धर्मः'

धारको धर्मः

आचार प्रभवो धर्मः

धारयते लोकं इति धर्मः, धियते लोकोऽनेने इति धर्मः

धर्म से पुरुष के अभ्युदय— 'अमितः उदयः' अर्थात् उन्नति को प्राप्त होना तथा निःश्रेयस् अर्थात् निश्चित फल की प्राप्ति होती है। धर्म की उत्पत्ति कर्म से होती है—कर्मजन्योऽभ्युदय निःश्रेयस् हेतुः अपूर्वाख्य आत्मगुणो धर्मः^{१९} अतः वर्णाश्रम के नियमानुसार शास्त्र प्रतिपादित अपने-अपने कर्तव्यों के आचरण से मनुष्यों की वृद्धि या आत्मा में धर्म की उत्पत्ति और अभिवृद्धि होती है अतएव धर्म और अधर्म— दोनों की उत्पत्ति का कारण कर्म है—

"विहितकर्मजन्यो धर्मः । अविहितकर्मजन्योऽधर्मः ।"^{१०}

सदाचरण अर्थात् अपने-अपने शुद्ध कर्तव्य धर्मों के मूल हैं क्योंकि सदाचार से ही सब धर्म उत्पन्न होते हैं— 'आचारप्रभवो धर्मः'। सदाचार परिवर्तनशील नहीं है, वह शाश्वत है— अनादि परम्परा से चला आ रहा है इसीलिए भगवान् मनु ने सदाचार को शाश्वत कहा है—

'चतुर्णामपि वर्णानाम् आचारश्चैव शाश्वतः'^{११}

दुराचरण से मनुष्य का अधःपतन होता है। वह मनुष्य का अभ्युदय नहीं होने देता है। दुराचारी पुरुष के सभी धर्मानुष्ठान फलहीन होते हैं। महाभारत में स्पष्ट कहा गया है—

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः यद्यप्यधीताः खलु षड्भिरङ्गैः ।

छान्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥^{१२}

धर्माचरण के लिये पुरुष में धैर्य आदि आन्तरिक गुणों का होना परमावश्यक है। धर्मानुष्ठान की भांति ये गुण सामाजिक व्यवहार के लिये भी उपादेय हैं। महर्षि मनु ने इन धृति आदि 10 गुणों के सम्पादन पर अत्यन्त बल दिया है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय-निग्रहः ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥^{१३}

धर्म पर स्थित रहने से मनुष्य की कीर्ति, धृति, प्रतिभा और विभूति का विस्तार बढ़ता है। यही अन्य सभी पुरुषार्थों का मूल है। कोई भी पुरुषार्थ धर्म के बिना सफल हो ही नहीं सकता। धर्म ही रक्षित होने पर सभी की रक्षा करता है— धर्मो रक्षति रक्षितः। धर्म के अनुष्ठान की आधारशिला है— आत्मज्ञान या तत्त्वज्ञान। यही ज्ञान मनुष्यों के धर्माधर्म में प्रवृत्त एवं निवृत्त होने का मूल कारण है।^{१४}

धर्म सदा सत्य रूप है, सत्य एक है। धर्म उसी सत्य का दूसरा नाम है। महर्षि वेदव्यास का कथन है जो सत्य है वही धर्म है, जो धर्म है वही प्रकाश है और जो प्रकाश है वही सुख है इसके विपरीत अधर्म ही अन्धकार है।^{१५} धर्म शासक का भी शासक है, वह मृदु से भी मृदु एवं उग्र से भी उग्र है। वह सभी शासकों का नियामक है अतः संसार की सभी व्यवस्थाएं धर्म द्वारा ही श्रेष्ठ बनीं—

क्षत्रस्य क्षत्रं, क्षत्रस्यापिनियन्तु, उग्रादपि उग्रं यो धर्मः।

तस्मात् क्षत्रियस्यापि नियन्तृत्वाद् धर्मात् प्रियं नास्ति, तेन हि नियम्यन्ते सर्वे।^{१६}

‘धर्म’ के अर्थविस्तार से राजधर्म, सेवा धर्म, क्षात्र धर्म, पुरुष धर्म, स्त्री धर्म आदि पदों का प्रणयन हुआ। इनमें आचरणजन्य वैशिष्ट्य ही अभिव्यक्त हुआ है। इन सभी धर्मों का स्वरूप—दिग्दर्शन कराने वाले ग्रन्थ ‘धर्मशास्त्र’ पद से व्यवहृत किये गये। धर्मशास्त्र सभी के लिये आचार संहिता है। प्रत्येक मनुष्य भिन्न—भिन्न परिस्थितियों में देश, काल, शक्ति तथा अधिकार के अनुसार धर्मांजन किस प्रकार कर सकता है— इनका परिज्ञान धर्मशास्त्र से ही ज्ञात हो सकता है। धर्मशास्त्र में धर्मशासक महर्षियों द्वारा प्रायः वैदिक ज्ञान की स्मृति होने के कारण इन्हें ‘स्मृति’ कहा गया है— धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।

मानव जीवन की सफलता, सार्थकता और शोभा धर्म के आचरण से ही होती है। तपस्या और धर्माचरण से ही भगवद्गुणों का चमत्कार प्रतीत होता है। धर्म ही सफलताओं का

सूत्र है यही प्राणियों के सुख समृद्धि की आधार शिला है। मानव जीवन को कृतार्थ कर देने वाला प्रथम पुरुषार्थ धर्म हैं। जहाँ धर्म है, वहाँ श्रीकृष्ण है, और जहाँ श्रीकृष्ण है वहीं विजय है:—

‘यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः’^{१७}

अर्थ

द्वितीय पुरुषार्थ का नाम ‘अर्थ’ है जिसके द्वारा मनुष्य के इस लोक और परलोक के समस्त प्रयोजन सिद्ध होते हैं उसे ‘अर्थ’ कहते हैं— यतः सर्वप्रयोजनसिद्धिः स अर्थः।^{१८} यही मनुष्यों के भोग, आरोग्य और धर्म का मुख्य साधन है। इसीलिये अर्थ की ओर सबकी प्रवृत्ति होती है— अर्थार्थ प्रवर्तते लोकः।^{१९} सभी अर्थ को प्राप्त करना चाहते हैं अतः उसका ‘अर्थ’ नाम भी सार्थक है— ‘अर्थ्यते सर्वेः इति अर्थः।’ सभी प्राणियों की सुख समृद्धि का मूल ‘धर्म’ है तथा धर्म का मूल ‘अर्थ’ है— ‘सुखस्य मूलं धर्मः। धर्मस्य मूलम् अर्थः।’^{२०} आचार्य कौटिल्य ने त्रिवर्ग में अर्थ को ही प्रधान मानकर उसे धर्म और काम का मूल बताया है— अर्थ एवं प्रधान इति कौटिल्यः। अर्थमूलौ धर्मकामौ।^{२१}

जिस पदार्थ से प्राणियों की जीविका चल सके उसे ‘अर्थ’ कहते हैं। अर्थ का मूल साधन है ‘वृत्ति’ अर्थात् आजीविका— वृत्तिमूलम् अर्थः।’ इस रूप में भूमि, धन, द्रव्य, विद्या, कला, कृषि, पशुपालन आदि आजीविका सम्बन्धी प्रयोजन की सभी वस्तुओं को अर्थ कहा जाता है। अर्थ की व्यापक व्याख्या करते हुए महर्षि वात्स्यायन ने कहा है— विद्या, भूमि, स्वर्ण—रजत, पशु, धन—धान्य, बर्तन, लकड़ी, लौहवस्तु, औढ़ना—बिछाना, मित्र का अर्जन और अर्जित का वर्धन— सभी अर्थ है।^{२२} शुक्रनीति में भी इसी अभिप्राय को स्पष्ट किया गया है।^{२३}

अर्थ का मूल है— वार्ता। यह संसार, कर्मभूमि है, यहाँ जीविका के साधनभूत कामों की प्रशंसा होती है। कृषि, व्यापार, गोपालन तथा विभिन्न प्रकार के शिल्प—ये सभी अर्थ प्राप्ति के साधन हैं। मनुष्यों के सभी कार्य अर्थ—मूलक हैं। अर्थ ही सभी कर्मों की मर्यादा के पालन में सहायक होता है। अर्थ के बिना धर्म और काम सिद्ध नहीं हो सकते हैं, धर्म—काम—दोनों ही अर्थ के दो अवयव हैं अतः अर्थ की सिद्धि से इन दोनों की भी सिद्धि हो जाती है।^{२४} अर्थशास्त्र के अनुसार 'अर्थ' पद का मुख्य अर्थ 'पृथ्वी' है। यही मनुष्यों की समस्त आजीविकाओं का मूल आधार है। इसी में मनुष्यादि के रहन—सहन, निर्वाह के सम्पूर्ण साधनों का उद्गम होता है अतः उसी को अर्थ कहते हैं— मनुष्याणां वृत्ति : अर्थः। मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः।^{२५} इसी पृथ्वी से सम्बद्ध पदार्थों— कृषि, पशु, भूमि आदि में अर्थ शब्द का विस्तार हो गया।

व्यवहार में अर्थ का अत्यन्त महत्व है। मनुष्यों की समस्त क्रियाएं अर्थमूलक हैं अतः उसी के उपार्जन में मनुष्य को महान् प्रयत्न करना चाहिए।^{२६} अर्थ का उपार्जन, संवर्धन, संरक्षण एवं सदुपयोग नियमपूर्वक करना चाहिये। अर्थ से परोपकार आदि द्वारा पुण्योपार्जन से परलोक में भी सुख का साधन होता है— यज्ञार्थं 'द्रव्यमुत्पन्नं यज्ञः स्वर्गसुखाय च।'^{२७} यद्यपि धन संग्रह जीवन का आत्यन्तिक लक्ष्य नहीं है तथापि शरीर यात्रा निर्वाह एवं देश और समाज के स्थूल अभाव को दूर करने के लिये धन की विशेष आवश्यकता रहती है।

अर्थ सभी गुणों एवं गुणीजनों के आकर्षण का केन्द्र है सभी विद्यावृद्ध, तपोवृद्ध और वयोवृद्ध भी धनवृद्ध के पास किंकर की तरह खड़े रहते हैं।^{२८} धनी व्यक्ति के दोष भी गुण बन जाते हैं— सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।^{२९} अर्थागम से मनुष्य सदैव युवा बना रहता है। मनुष्य को स्वकर्तव्य द्वारा न्यायोचित मार्ग से अर्थ का उपार्जन अवश्य करना चाहिये। अर्थ प्राप्ति से संतुष्ट नहीं होना चाहिये अन्यथा लक्ष्मी उसका त्याग कर देती है— अर्थतोषिणं श्रीः

परित्यजति।³⁰ अर्थएषणा मनुष्य के दुर्व्यसनों में परिगणित नहीं होती है— अर्थएषणा न व्यसनेषु गण्यते।³¹ शुद्ध अर्थ की प्राप्ति विद्या, विनय और सदाचार से सत्पात्र पुरुष में होती है। विद्या से सत्—असत्, उचित—अनुचित का ज्ञान होता है, विनय और सदाचार से अर्थ की सुरक्षा तथा सम्यक् विनियोग होता है। अर्थ सुरक्षा के चार मुख्य उपाय हैं— उद्योग, निरीक्षण, वृद्धि और विनियोग—

अलब्धमिच्छेद् योगेन लब्धं रक्षदवेक्षया ।

रक्षितं वर्धयेत् वृद्धया वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ।।³²

धन को अत्यन्त गुप्त रखना चाहिये। विनियोग में वित्त, गुणवानों को देना चाहिये। भागवत में धन व्यय के पाँच स्थान बताये हैं— (1) धर्म के लिये (2) यश के लिये (3) अभिवृद्धि हेतु (4) भोग के लिये (5) स्वजनों के लिये

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ।

पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते ।।³³

यह अर्थ त्रिवर्ग का साधता हुआ परम्परया मोक्ष रूप पुरुषार्थ में ही उपयुक्त होकर पूर्ण सफल होता है और मनुष्य के जीवन को कृतकृत्य कर देता है अतएव अर्थ भी धर्म के समान एक महान् पुरुषार्थ है।

काम

तृतीय पुरुषार्थ 'काम' है। लोक—स्थिति के मुख्य साधन धर्म और अर्थ पुरुषार्थों के समान ही 'काम' भी प्राणियों की लोक यात्रा में उपयोगी सुख—सामग्रियों का मुख्य साधन होने के कारण अत्यन्त उपादेय है। 'काम्यते इति कामः' — व्युत्पत्ति विषय और इन्द्रियों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाला मानसिक आनन्द ही मुख्यतया 'काम' कहलाता है। यह काम प्राणियों के पुण्य कर्मों का फल हैं—

इन्द्रियाणां च पञ्चानां मनसो हृदयस्य च ।

विषये वर्तमानानां या प्रीतिरूपजायते ॥

स काम इति में बुद्धिः कर्मणां फलमुत्तमम् ॥³⁴

यह काम चित्त का एक संकल्प है इसका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है अतएव केवल अनुभव गम्य है अतः महाभारत में कहा गया है कि स्रक्, चंदन, वनिता आदि प्रिय पदार्थों के स्पर्श और सुवर्णादि का संयोग होने पर मन में जो एक विशेष प्रीति उत्पन्न होती है वही चित्त का एक संकल्प— 'काम' है।³⁴ भगवान ही प्राणियों के शरीर में विषयाकार बनी हुई बुद्धि में अवस्थित होकर उसमें अभिव्यक्त आनन्द रूप हो करके कर्मों के फल के रूप में प्रतीत होते हैं।³⁵ 'काम्यन्ते इति कामाः' — व्युत्पत्ति के अनुसार शरीर और इन्द्रियों के उपयोग में आने वाले स्त्री पुत्र, गृह, क्षेत्र, धनधान्य, फल—फूल, भक्ष्य—भोज्य, लेह्य—चोष्य, पेय, नृत्य गीत, वस्त्र, अलङ्कार आदि तथा ऐहलौकिक और पारलौकिक अभिलषित पदार्थों को भी 'काम' कहते हैं इसी व्युत्पत्ति के अनुसार अणिमा आदि सिद्धियों को भी 'काम' कहते हैं।

काम की ओर प्राणियों की प्रवृत्ति स्वतः ही है। शास्त्रों में कहीं पर भी काम में प्रवृत्ति की कोई विधि नहीं है प्रत्युत रागतः प्राप्त स्वेच्छामय पाशविक प्रवृत्ति को रोकने के लिये यज्ञादि विधियाँ प्रतिपादित की गयी। महर्षि वेदव्यास ने भी इसी तथ्य को अनावृत किया है।³⁶ सांसारिक विषय क्षणिक सुख प्रदान कर तृष्णा को बढ़ाते हैं और प्राणी उस अपूर्ण सुख को प्राप्त करने के लिये अधिकाधिक लालायित रहते हैं अतः काम में मनुष्यों की इतनी अधिक प्रीति रहती है कि वह धर्म व अर्थ का भी त्याग कर देता है—

काममय एवायं पुरुष इति । स यथाकामो भवति, तत्क्रतुर्भवति,

यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते, यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते ॥³⁷

मानवजीवन का मुख्य फल तत्व ज्ञान है जिसके लिये उपयोगी मनुष्य जीवन को स्वस्थ सुखी एवं सुरक्षित रखकर अनुकूल बनाना ही 'काम' का प्रमुख लक्ष्य है और इन्द्रिय प्रतीति उसका गौण फल है।³⁸ अतः जितना विषय सेवन करने से अपना स्वास्थ्य ठीक रहे उतना ही काम का सेवन करना चाहिये।³⁹ इस काम की दुर्बल भावनाओं को नष्ट करके एकमात्र परमात्मप्राप्ति में ही लगा देना चाहिये, यह आत्मानुराग ही भक्तियोग है इससे जीव का हृदय अतीव विशुद्ध हो जाता है। विषयों की ओर चित्त का आकर्षण न होने पर ही मनुष्य को वास्तविक शान्ति का सुख प्राप्त होता है इस प्रकार से काम की निवृत्ति भी काम से ही हो जाती है इसीलिये 'काम' भी एक अद्वितीय पुरुषार्थ है।

मोक्ष

जन्ममृत्युजरारोगै व्याधिभिर्मानसक्लमैः।

दृष्ट्वैव सततं लोकं घटेन्मोक्षाय बुद्धिमान्॥

— महाभारत शांतिपर्व 2/215

चतुर्थपुरुषार्थ 'मोक्ष' है इसे 'परमपुरुषार्थ' भी कहते हैं। यही सबसे उत्तम, सबसे सुखमय, सबको अभीष्ट और अभीप्सित निरवधिक अखण्ड आनन्दमय महान् सरस पुरुषार्थ है।⁴⁰ 'मुच्यते सर्वैर्दुःखबन्धनैर्यत्र सः मोक्षः'— अर्थात् जिस पद को प्राप्त कर जीव, आध्यात्मिक आदि सम्पूर्ण दुःखबन्धनों से मुक्त हो जाता है उसे 'मोक्ष' कहते हैं इसे 'मुक्ति' भी कहते हैं। संसार के सभी सुख के साधन स्त्री पुत्रादि दुःख में परिणत हो जाते हैं। संसार में सुख—दुःख की ही सत्ता है। क्षणिक सांसारिक सुख और उसके संरक्षण के लिये किया गया परिश्रम रूपी दुःख उत्पन्न तीव्र होता है अतएवं गर्भ, जन्म एवं जरा आदि अवस्थाओं से उत्पन्न होने वाले आध्यात्मिक आदि त्रिविध दुःख समूह की एकमात्र सनातन महौषधी भगवत्प्राप्ति ही है जिसका

एकमात्र लक्ष्य निरतिशय आनन्दरूप सुख की प्राप्ति ही है।^{४२} इसीलिये विवेकशील पुरुषों को भगवत्प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये। उसकी प्राप्ति के साधन— कर्म और ज्ञान है—

तस्मात् तत्प्राप्तये यत्नः कर्तव्यः पण्डितैरैः।

तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्ते महामुने।।^{४३}

मोक्ष को निर्वाण भी कहते हैं। “निर्गतो वाणः तापो यस्मात् तत् निर्वाणम्” अर्थात् शोकजनित कायिक, वाचिक और मानसिक आदि समस्त सन्तापों की शान्ति को ‘निर्वाण’ कहते हैं अतः निर्वाण ही सब दुःखों की औषधि है— दुःखानामौषधं निर्वाणम्।^{४४} इसी अर्थ को प्रकाशित करने वाला मोक्ष का एक नाम ‘अपवर्ग’ भी है— अपकृष्टाः वर्गाः धर्मार्थकामा यस्मात् सः अपवर्गः अर्थात् जिसके सामने तीनों पुरुषार्थ निम्न कोटि के प्रतीत होते हैं उसको अपवर्ग कहते हैं। इसी को ‘कैवल्य’, ‘परमपद’, ‘परमकल्याण’, ‘परमज्योति’, ‘निःश्रेयस’, ‘आत्यन्तिक क्षेम’ अथवा ‘स्वाराज्य प्राप्ति’ भी कहते हैं।

अविधा अथवा अज्ञान के कारण पुरुष आत्मज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता, उस अविधा का विनाश आत्मज्ञान से ही संभव है अन्य किसी भी उपाय से नहीं। इस प्रकार जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप को यथार्थ समझकर उसका अनवरत चिंतन करने पर शोक, मोह इत्यादि सभी सांसारिक दोष दूर हो जाते हैं वेदों का कथन है कि—

तरतिशोकमात्मवित्। तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

अतः विवेकी मनुष्य को हर प्रकार सब ओर से ज्ञान को प्राप्त करने का ही प्रयत्न करना चाहिये। सभी मनुष्य अपने वर्ण और आश्राम में रहते हुए अपने—अपने कर्तव्य द्वारा ज्ञान

को प्राप्त कर सकते हैं। जो मनुष्य ज्ञान में निष्ठ है, उसके लिये नित्य, मोक्ष की प्राप्ति बतायी गयी है।^{४५}

मुक्ति दो प्रकार की होती है सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति वर्तमान देह से छूटते ही प्राप्त हो जाने वाली मुक्ति 'सद्यो मुक्ति' तथा अर्चिरादि मार्ग द्वारा ब्रह्मलोक में पहुँचकर, चिरकाल तक वहाँ के दिव्य भोग का अनुभव कर अन्त में ब्रह्मदेव के साथ जो मुक्ति प्राप्त होती है उसे क्रम मुक्ति कहते हैं।^{४६} इसके अतिरिक्त सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य आदि और भी मुक्ति के अनेक भेद भक्ति शास्त्रों में बताए गये हैं।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इस तरह से सम्पूर्ण विश्व के मानव समाज की इच्छाओं के प्रधान विषय संक्षेप में— ये ही चार पुरुषार्थ हैं। मनुष्य—जीवन के सभी विषयों का समावेश इन्हीं के अन्तर्गत हैं। ये ही मानव—जीवन में मुख्य चार अभिलषित हैं। अतः इन्हीं को चार पुरुषार्थ कहते हैं। मनुष्य समाज के सब हित इन्हीं में निहित है। अतः इनका यथोचित सम्पादन करने से मनुष्य—जीवन की सम्पूर्ण इतिकर्तव्यताएं परिपूर्ण हो जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

^१ महाभारत

^२ अर्थशास्त्र

^३ किरातार्जुनीयम् 1.11

^४ महाभारत शांतिपर्व 91.52

-
- ५ श्रीमद्भागवत 4.8.30
 - ६ सांख्यकारिका— 44
 - ७ वैशेषिक सूत्र
 - ८ मीमांसा सूत्र 1—2
 - ९ गौतम धर्मसूत्र
 - १० न्याय दर्शन
 - ११ म.स्मृ. 1.107
 - १२ म.भा.
 - १३ मनु.स्मृ. 6.92
 - १४ मनु.स्मृ. 11.18
 - १५ महा.शांतिपर्व 190.5
 - १६ शतपथ ब्राह्मण शां.भा.
 - १७ महाभारत शांतिपर्व 62.32
 - १८ नीतिवाक्यामृत : अर्थसमुद्देश
 - १९ चाणक्य सूत्र 7.28
 - २० चा.सू. 1.1, 2
 - २१ अर्थशास्त्र
 - २२ कामसूत्र
 - २३ शुक्रनीति 4—13
 - २४ म.भा. शांतिपर्व 167.12
 - २५ अर्थशास्त्र 15.1
 - २६ नारद स्मृति
 - २७ शु.नी. 1
 - २८ शु.नी. 1.79
 - २९ नीति शतक

-
- ३० नीति वाक्यामृतम् अर्थ समुद्धरण
३१ चाणक्य सूत्र 1.72
३२ मनुस्मृति : 7
३३ भागवत् 8.11.37
३४ महाभारत वनपर्व 33.1-2
३५ वही 33.3
३६ भागवत 4.21.35
३७ भागवत 115.11
३८ बृहदारण्यक उपनिषद् 4/3/5
३९ भागवत 1.2.10
४० गीता
४१ विष्णु पुराण 6.5.57
४२ वही 6.5.58, 59
४३ वही 6.5.60
४४ चाणक्य सूत्र 1.69
४५ महाभारत शांतिपर्व 92
४६ ऋग्वेद भाष्य भूमिका- सायणाचार्य